चिरंजीवी

(महाकाव्य)

महोपाध्याय माणकचन्द रामपुरिया

(



कलासन प्रकाशन
कल्याणी भवन बीकानेर (राज.)

BN 81 86842 24 1

महोपाध्याय माणकचन्द रामपुरिया

सस्करण	प्रथम 1998
प्रकाशन	कलासन प्रकाशन बीकानेर (राज)
लेजर प्रिट	श्री करणी कम्प्यूटर एण्ड प्रिण्टर्स बीकानेर (राज)
मुद्रक	कल्याणी प्रिन्टर्स माल गोदाम रोड, बीकानेर
मूल्य	110 रुपये

Chiringivi
(EPIC) by Mahopadhaya Manakchand Rampuria
Page 156 Price 110/

समर्पण –

जय कपीश! जय केशरिनन्दन।
राम–दूत बलधाम।
चरण–कमल पर शीश नवाकर–
करता विनय प्रणाम।
यही 'चिरजीवी' है प्रस्फुट–
स्वत हृदय का गान।
दिशा–दिशा की निशा मिटाएँ–
महावीर हनुमान।।

माणकचद रामपुरिया

जय वानरेन्द्र

अपने सुहृद पाठकों के समक्ष 'चिरजीवी' रखते हुए मुझे अपार आनन्द की अनुभूति हो रही है। महागुण धाम बजरग बली आज सम्पूर्ण भारतवर्ष के हृदय-पटल पर विराजमान हैं। ऐसा कोई नगर, कोई गाँव अथवा टोला नहीं है, जहाँ रामभक्त वानरेन्द्र की पूजा न होती हो। चाहे और किसी देवी-देवता के मदिर मिलें या न मिलें, किन्तु हर जगह सर्व गुण धाम, विद्या-वारिधि मरुत्वान का मदिर अवश्य मिलेगा। अक्षहन्ता अञ्जनानन्द समस्त भारतीय जीवन के प्रतीक हैं। हमारी भारतीय सस्कृति को बल प्रदान करने में वज्राग-हरीश का यथेष्ट योगदान रहा है। अतएव, इनकी वन्दना सम्पूर्ण भारतीय जीवन-सस्कृति के प्रति निवेदित प्रणति-भाव ही है।

'चिरजीवी' में वातपुत्र के जीवन के उन्हीं तन्तुओं को पिरोने की चेष्टा की गयी है, जो बहुलाश में सर्वसम्मत एव सर्वमान्य हैं। जैन, बुद्ध, सिक्ख तथा अन्यान्य विपुल आगम ग्रन्थों में जितेन्द्रिय प्रभजनजात का चरित प्राप्त है। किन्तु, सभी स्थानों पर सर्वाशत एक दूसरे को स्वीकार्य चरित अकित नहीं है। स्थान -स्थान पर विरोधाभास परिलक्षित हैं।

अत मेरी चेष्टा रही है कि 'चिरजीवी का हनुमान-चरित ऐसा आदर्श रहे, कि उसमें किसी के लिए कहीं विरोध की कोई गुजाइश न हो। अपने प्रयत्न में मुझे कितनी सफलता मिली है, नहीं जानता।

'चिरजीवी' को अपने बज्र-ककट के पावन चरणों पर धर कर मैं निश्चिन्त हूँ। बस।

माणक चन्द्र रामपुरिया

रूप मोहनी, कठ सुरीला-
चितवन बाँकी-बाँकी,
मन को बरबस हर लेती थी-
उसकी मादक झाँकी,

सभी तरह से सुगढ सलोनी-
उसकी छ्यि निराली,
जिधर निकलती बन जाती थी-
कहर ढाहने वाली,

बड़ी चचला मृग-छौनी-सी-
बात न कुछ भी सुनती,
रहती हरदम ऊधम का ही-
ताना-बाना बुनती,

जो भी उसको मिलते, उनको-
तग किया करती थी,
इन्द्र-परी थी ऋषि-मुनियों से-
कभी नहीं डरती थी,

कभी यहाँ, फिर वहाँ पहुँच कर-
उलट पलट कर जाती,
लोटा-डोरी-डड-कमन्डल-
ऋषि-मुनि के ले आती

त्राहि-त्राहि सी मची हुई थी-
इस उच्छृखलपन से,
याग-यज्ञ भी कभी न करते-
कोई अपने मन से,

सब कामों में झटपट आकर-
विघ्न उपस्थित करती,
कितनी बार कहा सब ने पर-
शान्त न क्षण भर रहती,

आखिर क्रोध जगा मुनियों को-
सबका मन अकुलाया,
सबने उसे बिठाकर सम्मुख-
कई बार समझाया,

बोले फिर वे-छोड़ो यह सब-
हमको नहीं सताओ,
अपनी चचल हरकत से मत-
मुनियों को भटकाओ,

शान्ति खोजते हैं हम अपनी-
रोड़े मत अटकाओ,
तुम भी रह कर साथ सभी के-
शान्ति हृदय की पाओ,

देखो दूर भविष्यत् में है–
अन्धकार–सा दिखता,
भूतल का इतिहास कहीं पर–
कोई दानव लिखता,

ऐसे में तो शान्त रहो अब–
अरे चचले बाले।
भावी नभ में घिरने को है–
बादल काले–काले,

लाख कहा पर उसके मन में–
शान्ति न तिलभर आई,
अपने मन का चचल अचल–
बाँध नही वह पाई,

वही रौब औं वही हठीला–
कर्म सदा थी करती,
दावानल–सी धूम मचाती–
वन में सदा विचरती,

इतनी चचल थी कुछ भी वह–
शान्त न रहने देती,
जहाँ कहीं कुछ वस्तु दिखी तो
छीना–झपटी करती,

आपा-धापी मची हुई थी-
उसके कारण वन में,
किसी तरह की शान्ति नहीं थी-
ऋषियों के भी मन में,

सबने मिलकर ऋषि मतङ्ग से-
यह अनुरोध किया था,
जो भी कष्ट वहाँ थे, सबने-
मिलकर बता दिया था,

ऋषि मतङ्ग ने भी तब उसको-
बुला बहुत समझाया,
चंचल हरकत छोड़ो अपनी-
उसको था बतलाया,

किन्तु हृदय में बात न कोई-
उसके कभी समाई,
अपने विकृत कार्यों से वह-
बाज नहीं थी आई,

ऋषि मतङ्ग ने शाप दिया तब-
जा तू बनरी हो जा,
इन्द्र परी है लेकिन अब तू-
बानर के सँग खोजा,

सुनकर शाप शिलावत् बाला-
बैठ गयी अकुलाकर,
ऋषि मतङ्ग के चरणों से फिर-
लिपट गयी सुस्ताकर,

बोली-ऋषिवर क्षमा करें अब-
क्षमा करें जग-त्राता,
जान न पाई महिमा तेरी-
तप निधान सुख-दाता,

ऋषिवर बोले-जाओ बाले-
शाप अनुग्रह होगा,
वानर-तन पर, चाहोगी जो-
वैसा ही यह होगा,

तुझको तेरा मन-वांछित फल-
सदा मिलेगा भू पर,
परम पुरुष की कृपा रहेगी-
बाले तेरे ऊपर।

तृतीय सर्ग

इन्द्र परी ही रूप वानरी-
धर कर अब जनमी थी,
ऋषि मतङ्ग का मिला अनुग्रह-
कुछ भी नहीं कमी थी,

महामनस्वी कुञ्जर कपि ही-
पूज्य पिता थे इसके,
यश की गौरव पुण्य पताका-
रहती आगे जिसके,

वही वानरी रूप अञ्जना-
बढी स्नेह बरसाती,
थी प्रख्यात अनिन्द्य सुन्दरी-
सब का हृदय लुभाती,

लावण्यमयी उस अञ्जनि का फिर-
शुभ विवाह हो आया,
स्वय यूथपति भद्र केसरी-
ने उसको अपनाया,

सुख का था साम्राज्य चतुर्दिक-
चिर आनन्द भरा था,
परम शान्ति थी, फिर भी मन पर-
कोई भार धरा था,

एक पुत्र की सघन लालसा-
मन में थी अकुलाती,
जिसके कारण सब कुछ होते-
चैन न लेने पाती,

ऋषि मतङ्ग ने कहा कि देखो-
दूर क्षितिज की लाली,
यश की मधुमय किरण धरा पर-
अब है आने वाली,

एक किरण वह दिनकर से भी-
होगी परम प्रतापी,
वही मिटाएगी धरती का-
अन्धकार दिग् व्यापी,

असुर धरा पर बढ आए हैं-
दानवता इठलाती,
सदाचार की रश्मि अकेली-
आज भागती जाती,

सुवन तुम्हारा ही धरती के-
तम का नाश करेगा,
वही यशस्वी निखिल भुवन का-
सारा कष्ट हरेगा,

उसके कारण ही भूतल पर-
फैलेगा उजियाला,
शीघ्र तुम्हारी गोदी में अब-
वह है आने वाला,



प्रभु की लीला गहन कि शकर-
को भी मोह जगा था,
परम महायोगी के मन में-
भी विक्षोभ जगा था,

सागर-मथन से निकला जब-
अमृत कलश सुखकारी,
स्वय ईश ने वहाँ धरा था-
रूप मोहिनी न्यारी,

मोहित थे सब देव-असुर-गण-
रूप-मोहिनी लखकर,
लगे बाँटने अमृत प्रभु ही-
अमर-कलश को धर कर,

जगा भाव शकर के मन में-
फिर से वह छवि देखें,
कैसा था वह रूप मोहिनी-
कुछ तो अब भी लेखें,

इतने में ही सृष्टि नवेली-
आँखों में जग आई
पल्लव दल में कोई तरुणी-
पड़ी तनिक दिखलाई,

शक्ति मोहिनी झाँक रही थी-
शकर जी अकुलाए,
उसे पकड़ने को बेसुध से-
दौड़े-दौड़े आए,

किन्तु मोहिनी लता-कुञ्ज में-
छिपकर थी मुस्काती,
शकर आते पास किन्तु वह-
दूर भागती जाती,

शकर के ही भक्त केसरी-
ने तुमको अपनाया,
पुत्र उसी का वाले। तेरी-
अमर कुक्षि में आया,



अमर तुम्हारी कुक्षि कि इसमें-
महावीर बल-धारी,
परम प्रकाश अखण्डित उज्ज्वल-
सभी तरह अविकारी,

धन्य अञ्जना तुम हो भू पर-
नयी विभा से मडित,
तेरे सुत में सदा रहेंगे-
सात्विक ज्ञान अखण्डित

तुम हो अमर, तुम्हारी सतति-
अमर रहेगी भू पर,
उसका यश गाएँगे ब्रह्मा-
विष्णु-महेश-दिवाकर,

जयति अण्जना तुम हो भू पर-
परम शक्ति की माता,
आज तुम्हारे चरण कमल पर-
अगजग शीश नवाता,

इतना कह कर ऋषि मतड्ग तो-
चले गए थे सत्वर,
रही अण्जना ध्यान लगाए-
अपने भाग्य विभव पर।

चतुर्थ सर्ग

चैत्र शुक्ल का मगल वासर–
शुभ लग्न था आया,
पवन सुवासित हुआ प्रवाहित–
अम्बर तक मुस्काया,

धरती रम्य सुसज्जित दिखती-
कण-कण था मुस्काता,
नदी-जलाशय का जल निर्मल-
उमग-उमग लहराता,

मुकुल-वकुल लहराते मनहर-
हँसती क्यारी-क्यारी,
भौंरों के 'गुन-गुन' से गुजित-
मुखरित थी फुलवारी,

लता-ललित नव पुण्ज-कुण्ज में-
लहर-लहर लहराती,
सुरभि-सुसेवित धूल-धरा की-
उड़-उड़ कर लग जाती,

मादक क्षण था स्वय प्रकृति भी-
चलती थी इठलाती,
सुषमा मडित दिव्य धरित्री-
लगती मोद मनाती,

ऐसे ही में रूद्र देव के-
सुफल एकादश छविघर,
हुए प्रकट हनुमान धरा पर-
नयी विभा से भास्वर,

स्वर्ण-विभा-आलोकित तन था-
कानों में थे कुण्डल,
पिङ्गल वर्ण सुशोभित उनका-
अग-अग थे चचल,

कछनी काछे पुष्ट तुष्ट थे-
कचन-से दृग तपते,
अधर सुसम्पुट कपित लगते-
राम-नाम थे जपते,

यज्ञोपवीत वक्ष पर सुन्दर-
तन पर नव अरुणाई,
कटि-प्रदेश में गूँज-मेखला-
की शोभा गदराई,

देख अण्जना क्षण भर में ही-
भाव-विभोर हुई थी,
परमानन्द-पुलक मन-प्रमुदित-
जैसे छुई-मुई थी,

स्वय केसरी हर्ष-विभव से-
क्षण-क्षण पुलकित होकर,
लगे मनाने मोद मगन हो-
अपनी सुध-बुध खोकर,

लहर खुशी की छाई घर-घर-
गूँज उठी शहनाई,
धरती के कण-कण पर मानो-
नव उमग मुस्काई,

देव-गणों ने हर्ष मनाया-
ऋषि-गण भी मुस्काए,
किष्किन्धा के नगर-डगर पर-
सबने फूल बिछाए,

कपि-गण की किलकारी गूँजी-
पर्वत भी अकुलाया,
सबने कहा-धरा पर कोई-
नव उद्धारक आया,

सर-सरिता के जल पर मादक-
लहर खुशी की छाई,
जल-प्रपात की नयी तरगे-
अम्बर तक उठ आई,

वन के पशु-पक्षी तक हिलमिल-
गीत लगे थे गाने,
विन बादल के मोर धरा पर-
आए नृत्य दिखाने,

जड़ता में भी नयी चेतना–
दिखती थी मुस्काती,
शान्त सरोवर की लहरें भी–
उठती थी बलखाती,

अञ्जनि–नन्दन का अगजग में–
जन्म महोत्सव छाया,
जड़–चेतन में सात्विकता का–
नया भाव लहराया।

पचम सर्ग

जन्म-काल से ही बालक की-
शक्ति पड़ी दिखलाई,
महा पराक्रम विपुल शौर्य की-
अद्‌भुत थी अरुणाई,

कोई कहते बालारुण को–
इसने फल–सा माना,
उन्हें लील जाने को इसको–
पड़ा शौर्य दिखलाना,

बालक थे उड़ गए गगन में–
पहुँचे जहाँ दिवाकर,
अमा निरी थी राहू भी था–
आया नभ में सत्वर,

इन्हें देखते भागा राहू–
गया इन्द्र के सम्मुख,
बोला–मेरा ग्रास छीनने–
आया है दुख अभिमुख,

तत्क्षण आकर इन्द्रराज ने–
अपना वज्र चलाया,
नन्हे बालक पर प्रहार कर–
नीचे उसे गिराया,

वज्र–घात से टूटा हनु था–
शिशु भी कुछ अकुलाया,
गिरा तुरत ही भू पर अपनी–
माँ के सम्मुख आया,

हनु टूट्य, हनुमान नाम फिर-
इसका यहाँ पड़ा था,
लेकिन बालक सबके सम्मुख-
निर्भय वहाँ खड़ा था,

इतना तो है सत्य कि इनमें-
अतुलित बल-विक्रम था,
अन्य सभी से भिन्न धरा पर-
इनका जीवन क्रम था,

इनकी गति थी पवन देव-सी-
बुद्धि शारदा जैसी,
इस भूतल पर कहीं दूसरी-
शक्ति न दिखती वैसी,



बचपन से ही ऋषि-मुनियों के-
सँग करते थे क्रीड़ा,
खेल-खेल में उन सबको भी-
दे देते थे पीड़ा,

कभी किसी की कम्बल लेकर-
यहाँ-वहाँ रख जाते,
कभी किसी की गठरी लेकर-
उसको ही ललचाते,

बहुत तंग थे साधु-तपस्वी-
लेकिन रोक न पाते,
उनसे कुछ कहने में ही सब-
मन-ही-मन डर जाते,

आखिर सब ने शाप दिया-तुम-
शक्ति भूल निज जाओ,
परम शान्ति से विचरो वन में-
सब को नहीं सताओ,

याद दिलाएगा जब कोई-
तब अपने को जानो,
कैसी शक्ति छिपी है तुम में-
सुनकर ही पहचानो,

तब से ही हनुमान शान्ति से-
जंगल में थे रहते,
अतुल पराक्रम रखकर भी थे-
विस्मृति का दुख सहते,

विद्या-वारिधि, ज्ञान-शिरोमणि-
ये थे परम तपस्वी,
परम साधना लीन रहे वे-
होकर अतुल मनस्वी

इनके यश का केतु गगन में-
दिखता है फहराता,
इनके गौरव-यश को भू पर-
जन-मानस दुहराता।

छठ सर्ग

जीवन क्रम नित बढता रहता-
      चलता आठों याम,
इसको रुकना नहीं बदा है-
      क्षण भर नहीं विराम,

गति ही जीवन की है द्योतक-
गति ही शक्ति महान,
गति ही है ससृति का लेखा-
गति ही जीवन प्राण,

पिछले क्रम से ही आगे की-
जगती मन में चाह,
ऐसे ही बनती रहती है-
भव की अपनी राह,

जो भी रहते पास उन्हीं से-
मिलती रहती सीख,
भावी की झोली में मिलती-
वर्त्तमान की भीख,

वर्त्तमान से सदा सीखते-
आए जग के जीव,
मिलती इससे ही आगे की-
सम्बल-शक्ति अतीव,

किन्तु सभी से अधिक पुत्र पर-
माँ का अतुल प्रभाव,
माँ की शिक्षा से ही जगता-
शिशु का पुण्य स्वभाव,

माता जैसी होगी वैसी-
देगी सीख अनूप,
बालक बढ़ते प्रतिक्षण-प्रतिपल-
माता के अनुरूप,

किन्तु जहाँ पर अपने सुत से-
माता रही उदास,
वहाँ भविष्यत् के दरवाजे-
मिलता खड़ा विनाश,

इसीलिए है शिशु-निर्मिति में-
जननी का ही हाथ,
माता ही रहती है प्रतिपल-
अपने शिशु के साथ,

इसलिए तो 'मातृ-गुरु भव'-
कहते हैं सब लोग
माता को गुरु से भी बढ़कर-
मिलता है सयोग,

अपनी माँ से होती उसको-
जीवन-शिक्षा प्राप्त,
हुई इसी से उसकी गाथा-
भूतल पर परिव्याप्त,

अञ्जनि भजती प्रभु को प्रतिदिन-
गोद लिए हनुमान,
लग जाता था इतने में ही-
बालक का भी ध्यान,

मूर्त्त रूप जग जाता प्रभु का-
उसके चारों ओर,
उसे देखनेवाले भी तब-
होते भाव-विभोर,

सदा अञ्जना अपने सुत को-
कहती कथा-पुराण,
मुग्ध मगन मन सुनते रहते-
भावाकुल हनुमान,

वीरोचित पुरुषों की गाथा-
गाती थी माँ रोज,
पुण्य बढ़ाने वाले जीवन-
की करती थी खोज,

राम-नाम का भी फिर सबको-
उसे सुनाया गीत
जगी इसी से भारत भर में-
रामचन्द्र की प्रीत,

बड़े हुए तो मन में जागा-
मानवता दृढ़ अनुराग
जीवन भर फिर रहे जगत-
उर में प्रभु का राग

इनका जीवन सदा सुखद था-
निर्मित कर्म-प्रधान
इनके कर्मों में कोई भी-
हुआ नहीं व्यवधान,

कर्मों से ही इन्हें शांति थी-
कर्म रहे आदर्श
कर्मों से ही हुआ सृष्टि में-
जीवन का उत्कर्ष।

सप्तम सर्ग

वानर-तन में रहकर भी–
उन्मुक्त रहे हनुमान,
इच्छामय निज रूप सँवारा-
करते थे पवमान,

कभी कहीं कोई भी बाधा-
सकी न उनको घेर,
जहाँ चाहते चल देते थे-
करते तनिक न देर,

बालकपन से ही उनका मन-
रहा राम में लीन,
राम-भजन वे नित प्रति करते-
लेकर कर में बीन,

यही समय था कोशल के नृप-
दशरथ थे अभिजात,
उनके घर में राम हुए थे-
श्याम-वर्ण जलजात,

ठुमुक-ठुमुक कर राजमहल में-
राम रहे नित खेल,
चारों भाई क्रीडा रत थे-
करते ठेलम ठेल,

जो भी आता, उन्हें देखकर-
हो जाता था मुग्ध,
कोमल कमल-कलित अंगों पर-
दृष्टि-मधुप थे लुब्ध,

राज महल के अजिर बीच जब-
आते राजकुमार,
उन्हे देखकर बज उठते थे-
जन-जन-मन के तार,

घमचम थी दीवार, स्वर्ण से-
मडित थे सब खम्भ,
खेल-खेल में सब करते नव-
जीवन का परिरम्भ,

उनकी छटा छिटक कर धरती-
कण-कण पर नव रूप,
उन्हें देख आनन्द-मग्न थे-
अवधपुरी के भूप,

दूर-दूर तक रामचन्द्र की-
चर्चा करते लोग,
सुन-सुनकर हनुमान-हृदय में-
जगा मिलन-सयोग,

सोचा चलकर कोशल में ही-
देखें उनका हाल,
वहीं बिताएँ राम-भजन में-
जीवन का कुछ काल,

जैसे जगा विचार कि आया-
वहाँ मदारी एक,
उसके मन में भी दर्शन की-
जागा रही थी टेक,

कहते हैं कुछ, शकर ने ही-
धरा मदारी रूप,
वहाँ वही आए थे बनकर-
वानर-पति अनुरूप,

माता की आज्ञा पाकर के-
निकल पड़े हनुमान,
अवधपुरी में जा पहुँचे थे-
वानर-बन अनजान,

शिव-शकर ने स्वय मदारी-
वानर थे कपिराज,
लगा नाचने वानर, शकर-
लगे सजाने साज,

झूम-झूम कर नाच दिखाते-
होकर भाव विभोर
भीड भरी अब गली-गली में-
उनके चारों ओर

राज भवन के सिंह द्वार पर-
लगे दिखाने नाच,
पुलकित तन से नृत्य-निरत थे-
भर कर नयी उलाँच,

रामचन्द्र भी ठुमक-ठुमक कर-
आए अपने द्वार,
लगे देखने नव वानर की-
मृदुल कला-व्यापार,

कुछ ही क्षण में लुब्ध हुए वे-
भर कर मन में हर्ष,
लोग-बाग सब देख रहे थे-
वानर का उत्कर्ष,

कहा राम ने कौशाल्या से-
वानर की है चाह,
मुझे चाहिए यही कि जिससे-
शमित रहेगा दाह,

मन में कोई और न इच्छा-
एक यही है आस,
इस वानर को लेकर माते-
रख दो मेरे पास,

वानर नाचा जैसे-जैसे-
मचले राजकुमार,
उसे पास रखने को बोले-
माँ से बारम्बार,

तुरत मदारी से बोली माँ-
करो यही उपचार,
दे दो वानर, चाह रहे हैं-
मेरे राजकुमार,

गया मदारी, लेकिन वानर-
रहा राम के साथ,
खेल दिखाता था वह उनके-
पद पर धर कर माथ,

राम-संग मारुति की इच्छा-
हुई सभी थी पूर्ण,
रहे विचरते भक्ति-भाव में-
होकर के मदघूर्ण,

बड़े हुए कुछ राम तो बोले-
जाओ अपने गेह,
हम भी अब तो शीघ्र चलेंगे-
घर से दूर विदेह,



किष्किन्धा नगरी में आए-
अञ्जनि-सुत अनुमान,
लगे पुन, वानर-गण के सँग-
करने कार्य महान,

ऋछ राज वानर के सुत थे-
बाली औ सुग्रीव,
वानर-पुर का कण-कण लगता-
जाग्रत भाव-सजीव,

यही पुरी है जिसका सब जन-
लेते हरदम नाम,
राम-भक्त हनुमान यहाँ ही-
लेते हैं विश्राम।

अष्ठम् सर्ग

ऋछराज जब समय प्राप्त कर-
सुरपुर गए सिधार,
जेष्ठ पुत्र बाली ने ही तब-
लिया राज का भार,

वाली औं सुग्रीव हृदय में-
भरा हुआ था प्रेम,
एक-दूसरे का लेते थे-
दोनों स्वस्तिक क्षेम,

भाई-भाई में सब दिन थी-
अतुलित प्रिति ललाम,
एक-दूसरे से चलते थे-
दोनों के ही काम,

पवन-तनय पर दोनों के ही-
मन में था विश्वास,
दोनों चाह रहे थे उनको-
रखना अपने पास,

पर सुकंठ के मन में जागा-
राम-रूप अनुराग,
इसीलिए हनुमान हृदय में-
इनके प्रति था राग,

आञ्जनेय के साथ सदा ही -
थे सुकंठ परितुष्ट,
पवन-सुवन भी इनके संग ही-
रहते थे सन्तुष्ट,

एक दिवस किष्कन्धा में था-
जागा भीषण युद्ध,
दुन्दुभि दानव आया दौड़ा-
होकर सब से क्रुद्ध,

बाली को ललकारा उसने-
करलो मुझ से द्वन्द,
रहने कभी न देंगे तुझको-
ऐसे ही निर्द्वन्द्व,

बाली दौड़ा उसे मारने-
किन्तु गया वह भाग,
बाली ने फिर उसे खदेडा-
जैसे क्रोधित नाग,

एक गुफा में दुन्दुभि दानव-
पैठ गया तत्काल,
किया प्रवेश वहाँ फिर बाली-
बनकर उसका काल,

खडा-खड़ा सुग्रीव द्वार पर-
देख रहा था राह,
इतने में ही पड़ी सुनाई-
कोई करूण-कराह,

गूँज उठा था वन-प्रांतर में-
भीषण तम चीत्कार,
और साथ ही नि सृत देखी-
तप्त रक्त की धार,

समझा, बाली मरा, गया वह-
अब तो स्वर्ग-सिधार,
तब सुकंठ ने किया तुरत ही-
बन्द गुफा का द्वार,

घर लौटा तो किया सभी ने-
उसका शुभ अभिषेक,
उसने ग्रहण किया था शासन-
पाकर सहमति नेक,

और उधर लौटा फिर बाली-
दुन्दुभि को जब मार,
किया तुरत सुग्रीव बन्धु पर-
उसने कठिन प्रहार,

ऋष्यमूक पर्वत पर आया-
भय से भाग सुकंठ,
सोचा यहाँ न कर सकता है-
बाली कोई टंट,

बाली यहाँ न बच पाएगा–
यही उसे था शाप,
इसीलिए किष्किन्धा लौटा–
मन में ले परिताप,

मारुति भी तो यहीं बसे थे–
अब सुकठ के पास,
यहाँ नहीं था किसी तरह का–
उनके मन में त्रास,

नित–नित नव–नव लगता था वह–
पावन शुभ्र प्रदेश,
खूब विचरते धरकर अपना–
तरह–तरह का वेश,

थे स्वच्छन्द यहाँ पर कोई–
करता क्या उत्पात,
सदा खिले रहते थे उनके–
मन के पारिजात,

उर में एक लगन थी जागी–
मिल जाएँ श्री राम,
किसी तरह भी वन–प्रदेश में–
दर्शन हों अभिराम,

चाह हृदय में जगी हुई थी–
लालक रही थी दृष्टि,
सुभग सलोना दृश्य घना था–
सजी–धजी थी सृष्टि,

राम–नाम रटते थे अविरल–
आञ्जनेय अविराम,
बड़ी लगन थी जल्दी आएँ–
मन–मंदिर में राम।

नवम् सर्ग

सीता हरण किया था जिस क्षण–
रावण ने उद्भ्रान्त,
भय से काँप उठा था सहसा–
पूरा वन का प्रान्त,

नदियाँ सिहर उठी थीं उनका–
थथम गया था नीर,
पूरे वन में कौंध गयी थी–
कहीं अदेखी पीर,

चौंक-चौंक पशु-पक्षी तक ने–
छोड़ दिए थे नीड़,
लगे देखने आँख उठाए–
सभी लगा कर भीड़,

कोई जब उस पथ से जाता–
सब उठते थे चौंक,
चीख रहे थे स्यार-लौमड़ी–
श्वान रहे थे भौंक,

सहमे-सहमे सब लगते थे–
थिर थे तरू के पात,
कोई कहीं नहीं करता था–
किसी तरह की बात,

सहसा देखा वन-प्रदेश में–
आते थे दो वीर,
तीर-धनुष था काँधे पर, वे–
दिखते थे गम्भीर,

तेजोमय था आनन उनका-
सभी तरह से पुष्ट,
ये शरीर से सहज गठीले-
भावों में परितुष्ट,

दिव्य ललाट चमकते, खिलती-
आँखें जलज-प्रभात,
सूरज-चाँद सरीखे दोनों-
दिखते ये अभिजात,

धीरे-धीरे युगल चरण धर-
चलते थे चुपचाप,
उन्हें देखते लगा कि जैसे-
मिटा हृदय का ताप,

मारुति बोले-कपि गण देखो-
आते कोई वीर,
हम चलते हैं पता पूछने-
होना नहीं अधीर,

दिखता मानो दो सुर-गण ही-
आते हैं इस ओर,
उन्हें देखकर हुआ हृदय है-
मेरा भाव-विभोर,

लगता शक्ति हुई है कोई-
कण-कण में परिव्याप्त,
दुख के दिन होने को लगते-
अब तो शीघ्र समाप्त,

इतना कह कर वायु-पुत्र ने-
तुरत बढ़ाये डेग,
चले वहाँ से भरे-भरे कुछ-
भरकर प्रबल प्रवेग,

देखा राम-लखन थे सम्मुख-
दोनों वीर कुमार,
कामदेव की शोभा जिनसे-
आज गई थी हार,

इन्द्रनील-सा चम-चम था तन-
भावुक अतुल अभीष्ट,
लगा कि जैसे स्वय खड़े हैं-
अन्तर तर के इष्ट,

बात-बात में मिले अचानक-
परिचय के दो शब्द,
लगा कि जैसे घिरे नयन में-
तत्क्षण प्रेमिल अब्द,

ऋष्यमूक पर्वत पर आए-
तीनों वीर तुरन्त,
बोले तब सुग्रीव कि लगता-
दुख का है अब अन्त,

जग के दृग से दोनों ही थे-
दुख में पड़े अधीर,
अब तक उनको नहीं मिला था-
कहीं शान्ति का कीर,

विपद पड़े पर जन-मानस में-
जगते शुभ्र विचार,
विपदा में ही विपद-ग्रस्त का-
होता है सत्कार

राम विकल थे सीता खातीर-
कहाँ गयी मुँह मोड़,
व्याकुल था सुग्रीव कि बाली-
करता घात अघोर,

दोनों व्यथित हृदय अब भू पर-
आज हुए थे एक,
दोनों के थी हृदय पटल पर-
समता की मृदु टेक,

मित्र हुए सुग्रीव राम ने-
दिया अभय वरदान,
दोनों के जीवन में जागे-
फिर से नए विहान,

मित्र-भाव है श्रेष्ठ भुवन में-
सभी तरह से श्रेय,
एकमात्र है यही हृदय में-
जन-जन के अभिप्रेय।

दशम् सर्ग

मित्र-भाव था घना हृदय में-
बजते थे हृ-तत्र,
राम हुए थे अब सुकठ के-
सात्विक जीवन-मत्र,

ऋष्यमूक पर्वत पर दोनों–
का अब पड़ा पड़ाव,
दोनों आँक रहे थे अपने–
मन में कहीं अभाव,

राम चले किष्किन्धा लेकर–
अपने तीर कमान,
साथ चले सुग्रीव स्वय भी–
होकर उत्थित प्राण,

रामचन्द्र ने किया विपिन में–
बाली का सहार
वानर-पुर के नभ में गूँजा–
कपि का विज्योच्चार,

फिर सुकठ को दिया राम ने–
किष्किन्धा का राज,
और तुरत ही वहीं बनाया–
अगद को युवराज,

तड़पन–जलन–व्यथा थी भीषण–
शान्त हुई वह आग,
किष्किन्धा के नगर-डगर में–
जागा नूतन राग,

उड़ा विहग भावों का नभ में-
उमगा जीवन स्त्रोत,
नए-भाव से हृदय-हृदय थे-
सब के ओत प्रोत,

वर्षा आई राम प्रवर्षण-
गिरि के बैठे छोर,
देख रहे थे मेह घिरे हैं
उनके चारों ओर,

वर्षा की बूँदों से जैसे-
विगलित होती राह,
उसी तरह उठ-उठकर गिरती-
मन में कोई चाह,

जैसे मावस की पावस में-
होता है पथ अन्ध,
उसी तरह थे आज हृदय के-
सब दरवाजे बन्द,

सोच रहे थे राम कि कैसे-
करें हृदय को शान्त,
क्षण-क्षण में हो उठता है यह-
मेरा मन उद्भ्रान्त

और उधर सुग्रीव हुए थे-
अपने में आसक्त,
बहुत दिनों पर प्राप्त भोग में-
मन से थे अनुरक्त,

राम-काज सब भूल गए थे-
ऐसा था दृढ मोह,
उसी समय हनुमान हृदय में-
जागा कुछ विद्रोह,

कहा कि राजन! मन में देखें-
कैसा है अनुराग,
जाग रही है दृग में कैसी-
आज अनोखी फाग,

जिसके कारण मिला सभी कुछ-
अन्तरतर है तृप्त,
उन्हें छोड़कर आप हुए हैं-
अपने में ही लिप्त,

स्वय बताएँ इस धरती पर-
ऐसा कैसा न्याय?
किसी तरह ऋण उतरे मन का-
करते नहीं उपाय,

स्वय सोच लें, हम क्या बोलें-
हम हैं केवल भृत्य,
महाराज के ही इंगित पर-
करते हैं हम नृत्य,

सुनकर वानर-पति के मन में-
जागा भाव नवीन,
और किया फिर राम-काज में-
अपने को तल्लीन।

ग्यारह सर्ग

वर्षा, बीती, शरद पधारा,
मिला भुवन को स्नेह सहारा,
डाली-डाली फूल विहँसते-
सब के मन में सपने बसते,

अवनी पर थी शान्ति सुशीतल-
शान्त पड़ा था सरिता का जल
किन्तु राम के मन में झाँको-
उनकी गहन व्यथा कुछ आँको,

दुख का कोई पार नहीं था-
उनका मन तो दूर कहीं था,
जाने सीता आज कहाँ है?
भटक रहा मन जहाँ-तहाँ हैं?

पवन-पुत्र सब देख रहे थे-
मनोभाव सब पेख रहे थे,
बोले वे सुग्रीव नृपति से-
सब वानर के ही अधिपति से,

वर्षा बीती, चले सजाएँ-
सीता का हम पता लगाएँ,
रघुपति दुख से लगते कातर-
हम सब को होना है तत्पर,

वानर-गण को तुरत बुलाएँ-
अपनी आज्ञा तुरत सुनाएँ,
समय न बीते जैसे-तैसे-
रहें न हम सब बैठे ऐसे,

मित्र-भाव का मान बढाएँ-
कर के हम कुछ काम दिखाएँ,
वानर हैं हम चचल मति है-
जाने हम सब की क्या गति है?



उधर राम के मन में जागा-
वानर-पति ने मुझको त्यागा?
मौन आज सुग्रीव हुआ क्यों?
जडता ने अब उसे छुआ क्यों?

क्यों वह कुछ उपचार न करता?
मुझ पर क्यों अब ध्यान धरता?
तडप रहा हूँ मूढ जानता-
मुझको अपना मित्र मानता।

लेकिन लगता बदल गया है-
उसमें जागा भाव नया है,
राज-पाट सब सम्पति पाकर-
बैठा घर में बदन छिपा कर,

उसे राह पर लाना होगा-
सत्य उसे समझाना होगा,
बोले राम-लखन! तुम जाओ-
वानर-पति को सबक सिखाओ,

बैठा है क्यों चुप्पी साधे?
मित्र-भाव की गठरी काँधे।
मित्र-भाव है उसे निभाना-
उसने मुझे न अब तक जाना।



लखन लाल ने रोष जगाकर-
किष्किन्धा में सत्वर आकर,
कहा कि सब कुछ क्षार करूँगा-
सबका ही सहार करूँगा,

बाली-सुत को देख हृदय में-
भाव-क्रोध का जगा निलय में,
कहा गरज कर-बोलो बन्दर-
क्यों हो निष्क्रिय, आज यहाँ पर,

बोलो क्यों सुग्रीव छिपा है?
राज-पाट सब धन किसका है?
रामचन्द्र को नहीं जानते?
कारण सबका नहीं मानते?

सच कहता मैं नहीं रुकूँगा-
सबसे इसका बदला लूँगा,
लखन लाल के क्रोधानल में-
तप्त हुई किष्किन्धा पल में,

पवन-पुत्र ने उनको रोका-
शान्त रहें प्रभु! कह कर टोका,
रानी तारा को बुलवाए-
सम्मुख आए शीश नवाए,

कहा कि राजन! मोह विकट है-
सकल विपद की यह आहट है,
इससे कोई नहीं बचा है-
इसका ही सब शोर मचा है,

हम वानर भी इसके कारण-
कर न सके कुछ काज निवारण,
लेकिन अब हम जाग गए हैं-
निद्रा को हम त्याग गए हैं,

सबको तुरत बुलाए प्रभुवर।
आते ही होंगे सब वानर,
सीता का अन्वेषण होगा-
सभी काम अब इस क्षण होगा,

इतने में सुग्रीव पधारे-
अपने मन का भार सँभारे,
बोले-राजन! निश्चय माने-
सीता तुरत मिलेगी, जाने,

रामचन्द्र के पास चलें हम-
लक्ष्य प्रकट है अब निकलें हम,
आशिष उनका हम सब लेकर-
बढे सुनिश्चित वन के पथ पर,



बैठे थे श्री राम शिला पर-
हाथों में मस्तक को धर कर,
पास वहीं वानर सब आए-
सब थे अपने शीश नवाए,

स्वस्ति वचन फिर कहे राम ने-
बैठे सब फिर वहीं सामने,
निकले फिर सब वन में आए-
रामचन्द्र में हृदय लगाए,

पवन-पुत्र को सम्मुख लेकर-
बोले राम मुद्रिका देकर
इसे जानकी को तुम देना-
उससे ही तुम आशीष लेना,



निकले पवनपुत्र फिर वन में-
माँ सीता के अन्वेषण में,
जगह-जगह फिर धूम मचाते-
रामचन्द्र का यश दुहराते,

जाम्बवान औ अगद भी थे-
कार्य-निरत अब जन-जन ही थे,
मन में उन्नत भाव जगाते-
दक्षिण दिशि में कपि-गणजाते,

सबके मन में भाव जगे थे-
राम-काज में हृदय लगे थे,
गुफा-गुफा में सब जा-जाकर-
ढूँढ रहे थे ध्यान लगाकर,

सब में सात्विक भाव जगे थे-
लक्ष्य-प्राप्ति पर नयन लगे थे,
पग-पग सब थे बढ़ते जाते-
नव-विहान के गीत सुनाते,

बारह सर्ग

चलते-चलते सब ने देखा-
एक विवर था कौतुक-लेखा
पवनपुत्र झट पाँव बढ़ाकर-
आए तुरत गुफा के अन्दर,

देखा कोई एक तापसी-
तप में थी अभिभूत दुआ-सी,
उसने सबको वहाँ बिठाया-
सबके श्रम का कष्ट मिटाया,

नया-नया फल-मूल खिलाकर-
बिठा दिया सागर-तट जाकर,
और पुन वह चली गयी थी-
तप में जाग्रत तिमिर-जयी थी,



सागर क्षण-क्षण उफनाता था-
शब्द भयकर जग जाता था,
सब कुछ वहाँ भयकर लगता-
मन में नव उद्वेलन जगता,

एक गृद्ध था वहीं शैल पर-
बैठा चुपके ध्यान लगाकर,
वह तो था सम्पाती पक्षी-
सब जीवों का था वह भक्षी,

उसने देखा वानर-दल को-
लहर मारते सागर-जल को,
बोला-फिर वह उन्हें बिठाकर-
आओ मेरे भाई, वानर,

सीता हरण महालेखा है-
हमने सब कुछ ही देखा है,
रावण ने लका में लाकर-
कैद किया है उसे डराकर,

वहाँ अशोक विपिन है भारी-
बैठी है सीता बेचारी,
देख रहा मैं अब भी सम्मुख-
गृद्ध दृष्टि है सबके अभिमुख,

जो भी लका में जाएगा-
पता जानकी का पाएगा,
देखो आगे सागर गहरा-
लका में दानव का पहरा,

जो भी यह सब पार करेगा-
विघ्नों से जो नहीं डरेगा,
उसे मिलेगी सीता निश्चय-
प्राप्त करेगा वह वर अक्षय,

इतना कहकर खग सम्पाती-
उड़ा गगन में ताने छाती,
और यहाँ वानर-दल अपने-
साहस पर सब लगे कलपने,



भीषण सागर था लहराता–
नहीं किनारा था दिख पाता,
कौन पार सागर के जाए–
कैसे कुछ भी पता लगाए?

लगे सोचने वानर के दल–
किसमें कितना है साहस–बल?
जाम्बवान ने कहा कि हम हैं–
बुझे दीप में जैसे तम है,

पर नहीं मैं जा पाऊँगा,
वृद्ध हुआ मैं गिर जाऊँगा,
अगद बोले–मैं जाऊँगा–
लौट नहीं पर आ पाऊँगा,

इसी तरह सब वानर डरते–
पार न कर पाएँगे कहते,
जाम्बाबान ही तब हनुमत से–
बोले अपने निश्चय मत से,

कहा–पवनुसत! तुम में बल है–
तुम में अतुलित शक्ति अचल है,
करो तुम्हीं विस्तार हृदय का–
अपनी दैवी शक्ति अभय का,

पार करो यह विस्तृत सागर-
तुम हो पौरुष के रत्नाकर,
ज्ञात न तुमको कितना बल है?
तुम में कैसी शक्ति प्रबल है?

सुनकर पवनपुत्र ने अपना-
वदन बढ़ाया जैसे सपना,
देह विशाल बढ़ी, ज्यों पर्वत-
पर हों अनगिन पर्वत क्रमवत्,

गिरि महेन्द्र पर चढ़कर बोले-
कोई मेरी ताकत तोले,
पाँव जमा फिर देह बढ़ाई-
आँखों में कुछ लाली छाई,

पवनपुत्र अब उड़ने को थे-
दूर गगन से जुड़ने को थे-
गूँजी नभ तक जय-किलकारी-
पवन पुत्र की थी बलिहारी।

तेरह सर्ग

पवनपुत्र नभ में जाते थे-
अणु-अणु नभ के थर्राते थे,
दिखते थे वे बिल्कुल वैसे-
पच्छ युक्त हो पर्वत जैसे,

प्रबल वेग का विपुल शोर था-
झन-झन झझा का झकोर था,
पत्ते-पत्ते बिखर-बिखर कर-
उडते जाते थे कर हर-हर,

बडे-बडे वृक्षों की डाली-
लगती थी सब उडने वाली,
जड से उखड़-उखड कर तरुवर-
गिरते थे सागर में झर-झर,

पवनपुत्र का लाल-लाल तन-
हुआ और ही रक्तिम उस क्षण,
रोम-रोम तक हुए खड़े थे-
दाँतों पर अब दाँत पड़े थे,

दोनों मुट्ठी कसी हुई थी-
उलटी जिह्वा धँसी हुई थी,
पूँछ गगन में लहर रही थी-
घटा-छटा सब बिखर रही थी-

बादल में ज्यों बिजली चलती-
ऊषा की ज्यों रश्मि मचलती,
मन की जैसी गति है रहती,
भार धरित्री जितना सहती,

उससे भी वह वेग प्रबल था–
क्षिति पर ज्यों तारा चचल था,
जैसे उत्कापात धरा पर–
होता प्रलय प्रपात धरा पर,

उससे भी वह वेग प्रबल था–
चपला से भी तेज चपल था,
लहरें सागर की उठ–उठकर–
गिर–गिर पड़ती तडप–तडपकर,

चले प्रभञ्जन–सुत दक्षिण को–
लका के उस छोर पुलिन को,
गिरि अरिष्ट था शीश उठाए–
वहीं उन्होंने पाँव जमाए,

उतरे गिरि पर नजर घुमाई–
अपनी थोड़ी श्रान्ति मिटाई,
देखी–लका चम–चम करती–
स्वर्ण–विभा से मन थी हरती,



पवन–सुवन कुछ आगे आए–
राज–डगर पर पाँव बढाए,
तभी लकिनी सम्मुख आई–
गरज–तरज कर रोष दिखाई,

मूढ़ यहाँ जो आया पापी-
यही धृष्टता है सतापी,
बचकर नहीं निकल सकता है-
यहाँ अकेले जल सकता है,

बड़ी आग है यहाँ नगर में-
लका के इस स्वर्ण-डगर में,
किसने भेजा तुम्हें बताओ-
अपना सब मन्तव्य बताओ,

लकिनि ने फिर बढ़कर रोका-
क्रुद्ध भाव से उनको टोका,
बोले तब हनुमान कि मुझको-
जाने दो क्या इसमें तुझ को,

मैं आया हूँ एक काम से-
मेरा है सम्बन्ध राम से,
सुनते लकिनि आग बबूला-
हुई सकल आनन तक फूला,

कसकर उसने हाथ उठाया-
पवनपुत्र पर जोर लगाया,
कपिवर ने तब मुष्टि साधकर-
मारा उसको, हाथ बाँध कर,

भाग गयी वह दाड़ मार कर-
निकले तब कपि राज-मार्ग पर,
सजा-धजा था नगर सलोना
चमक रहा था कोना-कोना,

उतरे कपिवर शून्य-प्रहर में-
खड़े सिपाही थे घर-घर में,
आए सब की नजर बचाए-
माँ सीता का ध्यान लगाए।

चौदह सर्ग

राजमहल में कपि-वर आए-
लगते थे मन से अकुलाए,
घर-घर में वे झाँक-झाँक कर-
लगे देखने ताक-ताक कर

थी लावण्यमयी बालाएँ-
सोईं नूतन राग-रँगाए,
कुछ अल्हड़, कुछ परम विनीता-
किन्तु वहाँ थी एक न सीता,

अधर-अधर पर राग भरे थे-
सब के सारे तन उघरे थे,
कामुकता का दृश्य जगा था-
इससे बेवस हृदय पगा था,

वहीं एक शय्या पर चवल-
कपिवर ने देखा था अविचल,
रानी मन्दोदरी पड़ी थी-
लगती सचमुच भव्य बड़ी थी,

राग अधर से फूट रहे थे-
सपने मन को लूट रहे थे,
उसे देख मारुति कुछ सहमे-
अपने श्रम पर क्षणभर थथमे,

फिर सोचा, दृढ भ्रान्ति यही है-
सीता का यह रूप नहीं है,
वहाँ राम की रटन अधर पर-
होगी सूखी वेणी सर पर,

आगे फिर दशकध दिखा था–
रोम-रोम वीरत्व लिखा था,
विष्णु-चक्र औं इन्द्रायुध के-
घाव लगे थे विकट युद्ध के,

नभस्वर-सुत कुछ आगे आए-
देख रहे थे आँख गड़ाए,
किन्तु कहीं सीता का आनन-
देख ने पाए कपि मन-भावन,

निकले घर से आए बाहर–
जल्दी-जल्दी अपना पग धर,
एक वहीं उपवन था सुन्दर-
हुए प्रविष्ट उसी में कपिवर,

पलभर थोड़ी दौड़ लगाई–
दिशा-दिशा में दृष्टि घुमाई,
देखा एक सघन था तरुवर–
वातजात चढ़ गए उसी पर,

दूर-दूर फिर नजर घुमाकर-
लगे देखने ध्यान लगाकर,
परस वृक्ष का पाकर सहसा–
अनिलानन्दन का मन विहसा,

झंकृत हुआ अचानक अन्तर-
अतुल प्रभा-सी जागी भीतर,
नजर झुकी तो देखा कोई-
दैवी छवि है निज में खोई,

वहीं विटप के नीचे पल-पल-
सिसक रही थी अबला अविचल,
लगती थी कृष-बदनी जैसी-
कमल-रहित पुष्करणी जैसी,

शुक्ल पक्ष की क्षीण कला-सी-
भाग्य-प्रताड़ित नव अबला-सी,
रामनाम था युग्म अधर पर-
अपने पद पर थे दृग मनहर,

देर न कुछ भी लगी समझते-
माँ सीता का रूप निरखते,
कितनी भोली भाव प्रकृति है-
लेकिन कैसी कुटिल नियति है,

तम का बाकी एक प्रहर था-
भेद न उघरे मन में डर था,
जल्दी ही अब नीचे जाऊँ-
सीता माँ को धैर्य बँधाऊँ,

इतने में ही हलचल छाई-
कनक महल से पड़ी सुनाई,
देखा रावण को ही आते-
मन्थर गति से कुछ मुस्काते।

कहा कि सीते, रोना छोड़ो-
राम मनुज से नाता तोड़ो,
बात मानिनी! मेरी मानो-
लकेश्वर हूँ मुझको जानो,

तुम्हें बनाऊँगा पटरानी-
नहीं चलेगी अब मनमानी,
और नहीं तो अन्त करूँगा-
तेरा सुन्दरि! प्राण हरूँगा,

सुनकर सीता ने भी कसकर-
डाँटा उसको अपने जी भर,
कहा-चोर तू पापी जी का-
तेरा वैभव सब है फीका,

पापाचारी! तू है ढोंगी-
सीता वश में कभी न होगी,
नाश भले हो जाए मेरा-
वश न चलेगा मुझ पर तेरा,

सुनकर रावण अकुलाया था-
खड्ग मारने को आया था,
लेकिन उसकी पटरानी ने-
छीना खड्ग, कहा दो जीने,

रावण लौटा कनक महल में-
कुत्सित जीवन के घन पल में,
अजिर-पुत्र सब देख रहे थे-
उसके दृग से अश्रु बहे थे।

पद्रह सर्ग

गधाशन-सुत तरू पल्लव में-
छिपकर बैठे शून्य विभव में,
उनके मन में तरह-तरह के-
मनोवेग आते रह-रह के,

वे अब बेसुध आहत स्वर थे-
सीता के दुख से आतुर थे,
समय मिला था एक मास का-
दैत्यराज के मृत्यु-पाश का,

मरुत्वान थे विह्नल क्षण-क्षण-
अन्तर मन में दुख था भीषण,
उनकी मुष्टि कभी बन्ध जाती-
लहर क्रोध की उन्हें जगाती,

मन ही मन गाली देते थे-
बदला रावण से लेते थे,
लंकापति था अपने घर में-
तम के शून्य निशीथ प्रहर में,

देखा सब कुछ पवनपूत ने-
सोचा क्षण भर रामदूत ने,
कैसे ऐसे उन तक जाऊँ-
कैसे फिर विश्वास दिलाऊँ,

राम-भक्त हूँ, क्यों समझेगी?
दनुज कपट को मान न लेगी?
यही सोच हनुमत ने गाए-
रामचन्द्र का चरित सुनाए,

सुनते ही सीता का दुख भागा-
मन ने सारा संशय त्यागा,
बोली-किसने कथा सुनाई?
किसने तम में ज्योति जगाई?

आंजनेय अब आए सम्मुख-
चरण पकड़कर थे अब अभिमुख,
बोले-माते! मैं आया हूँ-
राम-संदेशा मैं लाया हूँ,

सुनकर तड़प उठी वैदेही-
वातजात-संदेशे से ही,
बोली-कैसे देर लगाई-
प्रभु की कोई खबर न आई,

बोले हनुमत-पता नहीं था-
देर हुई हेतु यही था
देर नहीं अब हो पाएगी-
वानर-सेना अब आएगी,

जिसने सीता हरण किया है-
उसने अपना मरण लिखा है,
रावण का परिवार मिटेगा-
उसको कोई शरण न देगा,

तेरे कारण राम विरह से-
रहते कातर दु,ख असह से,
उनको कुछ भी नहीं सुहाता-
हरपल बेबस मन हो जाता,

वानर हूँ, वानर सग रहता-
लेकिन मइया! सच-सच कहता,
जब तक तेरा त्राण न होगा-
धरती का कल्याण न होगा,

वानर सेना लेकर लका-
आएँगे प्रभु, मत कर शका,
सच समझो, यह बात हमारी-
चलता हूँ माँ! है लाचारी,

इतना कह कर शीश नवाया-
पवन तनय ने वचन सुनाया,
आज्ञा दो माँ! मैं जाऊँगा-
शीघ्र राम को ले आऊँगा,

दुख का सारा भार मिटेगा-
नाम तुम्हारा जन-जन लेगा,
सच मानो, मैं देख रहा हूँ-
भावी आज परेख रहा हूँ,

रावण का वध होगा निश्चय-
धरती होगी दुख से निर्भय,
अवधपुरी माँ तुम जाओगी-
राम-राज का सुख पाओगी,

सबको है माँ यही प्रतीक्षा-
दुनिया लेगी इससे शिक्षा,
इतना कह कर आगे आए-
पवन तनय कुछ शीश झुकाए,

चरण-कमल रज लेकर कर से-
उसे लगाया अपने सर से,
माँ का मन में ध्यान लगाए-
वे उपवन से बाहर आए।

सोलह सर्ग

अजनि-नन्दन के मन में कुछ-
नया भाव भर आया था,
जनकनदिनी की करुणा का-
जिसमें क्षोभ समाया था,

विह्वल मन था, क्रूर दशानन-
को हम पाठ पढ़ाएँगे,
जैसे होगा माँ सीता को-
निश्चय मुक्ति दिलाएँगे,

आगे बढ़े तो देखा खिलकर-
तरुवर-दल लहराते थे,
रस से भरे सरस फल पक कर-
मादक गंध लुटाते थे,

फल-मूलों को देख तुरत ही-
क्षुधा उन्हें जग आई थी,
देखी तरु की डाली-डाली-
भरी-पुरी गदराई थी,

बढ़कर कपि-कुञ्जर ने सारे-
वृक्षों को झकझोर दिया,
एक-एक कर फल-मूलों को-
क्षण भर में ही तोड़ लिया,

इतने में कुछ प्रहरी आए-
उन्हें रोकने समझाने,
पवनपुत्र को राक्षस-गण सब-
लगे डराने धमकाने,

इतने में ही उनके मन में-
क्षोभ जगा वे क्रुद्ध हुए,
खड़े निशाचर-गण के सम्मुख-
ज्वाला तप्त विरूद्ध हुए,

एक-एक कर सब पेड़ों को-
जड़ से तोड उखाड़ दिया,
शान्त अशोक विपिन को सहसा-
कपि ने तुरत उजाड दिया,

जहाँ जानकी बैठी थी उस-
तरु को केवल छोड़ दिया,
और नहीं तो पत्ता-पत्ता-
उपवन का था तोड दिया,

जलज भरे सब जलाशयों को-
कपि ने मथ डाला था,
लगे घूमने, वन में जैसे-
कुञ्जर हो मतवाला था,

पहरे पर तैनात पहरुए-
व्याकुल थे घबड़ाए थे,
दौड़े-दौड़े लंकापति के-
पास सभी जन आए थे,

जाकर सब ने कहा कि राजन।
वानर कोई आया है,
उसने पूरे प्रमदा वन को-
खँडहर एक बनाया है,

एक न पत्ती शेष बची है-
सभी वृक्ष हैं टूट गए,
लगता स्वर्णिम लका के हैं-
भाग्य अचानक फूट गए,

बड़ा उपद्रव मचा रहा है-
बात न कोई सुनता है,
उपवन के सब पेड़ो को वह-
पकड़-पकड़ कर धुनता है,

बड़ी-बडी चट्टानों तक को-
मुष्टि मार कर चूर्ण किया,
राजन! भव्य सुरम्य विपिन का-
सब कुछ चकनाचूर किया,

सुनकर क्रोधित रावण धधका-
बोला-बन्दर पापी है,
तुरत पकड़कर लाओ देखूँ-
कैसा वह सतापी है?

अक्षकुमार दशानन-सुत ही-
पहले लड़ने आया था,
पवन-सुवन ने क्षणभर में ही-
उसको मार गिराया था,

मेघनाद फिर आया, चाहा-
इसका काम तमाम करें,
वानर है यह छोटा वनचर-
इससे क्या सग्राम करें,

पवन-तनय ने मेघनाद की-
सेना को ही मार दिया,
गरज-तरज कर इन्द्रजीत पर-
उसने कठिन प्रहार किया,

विचलित होकर शुक्रजयी ने-
ब्रह्म अस्त्र तब साधा था,
वानर पति को ब्रह्म-पाश में-
उसने कस कर बाँधा था,

बँधे-बँधे से कपिवर सम्मुख-
रावण के ही आए थे,
राम-दूत हूँ-परिचय अपना-
सब को यही बताए थे,

रावण का दरबार लगा था-
जन-जन मोद मनाते थे,
वानर को सब छेड़-छेड़कर-
खिल्ली खूब उड़ाते थे,

वानर-पति हनुमान सभा में-
मौन साधकर बैठ गए,
करने लगे निशाचर उनसे-
छेड़-छेड़कर खेल नए।

सतरह सर्ग

वानर-पति को देख दशानन-
क्रोधित होकर काँप उठा,
यह है भिन्न अन्य कपि गण से-
अपने मन में भाँप उठा,

देखा है यह निर्भय वानर-
तनिक न मन में डरता है,
बात किसी की नहीं मानता-
अपने मन की करता है,

सेवक-गण से कहा कि इसकी-
झटपट पूँछ जला डालो,
मार-पीट कर इस वानर को-
जल्दी दूर भगा डालो,

सुनते ही सब निश्चर दौड़े-
वानर-वर के पास गए,
तेल और परिधान लिए सब-
मन में भर उल्लास गए,

कसकर वस्त्र लपेट पूँछ पर-
छिड़क दिया था तेल वहाँ,
ताली दे-दे आग लगाई-
करने को कुछ खेल वहाँ,

आग पूँछ की लगी फैलने-
सभी निशाचर हँसते थे,
जितना सम्भव था निश्चर सब-
कपि को हँसकर कसते थे,

इतने में सब बन्धन टूटे-
उछले वीर अटारी पर,
अब तो कपि-वर चढे हुए थे-
जलती वह्नि सवारी पर,

महल-महल पर उछल-उछल कर-
कौतुक अपरम्पार किया,
सोने की पूरी लका को-
क्षण भर में ही क्षार किया,

जलकर गिरने लगे महल तक-
कर-कर के स्वर झनन-झनन-
चीख रहे थे मनुजाद सब-
चलता था उन्चास पवन,

जल-जलकर सब हीरे-मोती-
पानी जैसे बहते थे,
लका में चीत्कार मचा था-
जन-जन सकट सहते थे,

क्षार हुई हुई थी स्वर्णपुरी सब-
तब कपीश सुस्ताए थे,
डुबकी एक लगा सागर में-
अपना दाह मिटाए थे,



सीता के सम्मुख फिर आकर-
राम-अँगूठी देते हैं,
जनक किशोरी के अन्तर की-
तत्क्षण आशिष लेते हैं,

सीता बोली-बहुत थके हो-
कुछ क्षण तो विश्राम करो,
छिपकर कहीं किसी झाड़ी में-
संध्या तक आराम करो,

बोले तब हनुमान कि मइया-
शीघ्र यहाँ मैं आऊँगा,
सच कहता हूँ राम-लखन को-
जल्दी ही अब लाऊँगा,



धैर्य बँधाकर माँ सीता को-
पवन-पुत्र उड जाते हैं,
एक छलाँग लगाकर झटपट-
गिरि महेन्द्र पर आते हैं।

अठारह सर्ग

गिरि पर आतुर बैठे कपि-गण-
    सोच रहे थे यही वहाँ,
जाने कैसी लका नगरी?
    होंगे प्रिय हनुमान कहाँ?

इतने में ही मारुति-नन्दन-
विकट गरजते दीख पड़े,
दूर गगन में दमक रहे थे-
उनके लोचन बड़े-बड़े,

उन्हें देखकर किलकारी सब-
बानर भरने लगते हैं,
हर्ष-पुलक उत्साह सभी के-
मन में सहसा जगते हैं,

उतरे फिर हनुमान शैल पर-
सब ने ही सत्कार किया,
कोई हाथ पकड़कर कोई-
कर सिर पर धर प्यार किया,

बोले कपि-वर-सीता माँ का-
मुझको दर्शन आज हुआ,
मन प्रसन्न हो गया हमारा-
रामचन्द्र का काज हुआ,

स्वर्णपुरी के एक विपिन में-
आज जानकी बन्द पड़ी,
तेज-दीप्त वह अग्नि-ज्वलित है-
दीप-शिखा-सी मन्द पड़ी,

राक्षसियों से घिरी अकेली-
समय किसी विध काट रही,
मुझे देखकर उनके दृग से-
अश्रुधार निर्बाध बही,



हनुमत के सँग वानर-गण सब-
रामचन्द्र के पास गए,
मधुवन के फल भक्षण करते-
पीते मधु सोल्लास गए,

जैसे कपि सब चले कि नभ में-
कोलाहल अभिराम हुआ,
बोले तब सुग्रीव राम से-
सच मानें सब काम हुआ,

और नहीं तो मधुवन के फल-
कौन भला कपि खा पाते?
असफल होने पर ये कैसे-
अपना मुँह दिखला पाते?

इतने में हनुमान साथ सब-
कपि-गण उड़ते आते हैं,
आशिष देकर राम सभी को-
अपने पास बिठाते हैं,

कपि-पुङ्गव ने चूडामणि दे-
सारी बात बताई थी,
कैसे सीता को देखा था-
कैसे आग लगाई थी,

सब कुछ सुनकर कहा राम ने-
चलने का उद्योग करो,
लका तक चलना है सबको-
मन में शक्ति अपार भरो,



शख बजा कर सब जन निकले-
राम-लखन सुग्रीव चले,
शुभ लग्न था, वानर भालू-
मिलकर निकले गले-गले,

किष्किन्धा से चलते-चलते-
सिन्धु-तीर सब आते हैं,
सागर की उत्ताल तरगे-
देख किन्तु डर जाते हैं,

लगे सोचने, कैसे हम सब-
इस सागर को पार करें,
लका के गढ पर चढ कैसे-
रावण का सहार करें,



उधर स्वर्ण लका में निशिचर-
रहते थे उद्भ्रान्त सभी,
जब से कपि-वर जार गए थे-
भय से थे आक्रान्त सभी,

राक्षसेन्द्र ने मत्री-गण सग-
इस पर पुन विचार किया,
जो भी श्रेष्ठ तमीचर थे सब-
का मत बारम्बार लिया,

किन्तु सभी ने ठकुर सुहाती-
से ही केवल काम लिया,
वीरों में बस मेघनाद औ-
रावण का ही नाम लिया,

किन्तु विभीषण भाई ने ही-
समुचित राह दिखाई थी,
सीता को लौटा दो रावण-
युक्ति युक्त बतलाई थी,

सुनकर रावण ने भाई पर-
कसकर चरण प्रहार किया,
बन्धु विभीषण को लका से-
उसने तुरत निकाल दिया,

साधु अवज्ञा का फल भू पर-
वड़ा भयकर होता है,
पृथिवी-पति भी पल में अपना-
वल-वैभव सव खोता है,

यही हुआ रावण ने अपना-
सव कुछ स्वय गँवाया था,
धन-जन-वल परिवार हजारों-
कुछ भी काम न आया था,

किन्तु विभीषण राम-चरण में-
आकर शीश नवाते हैं,
रामचन्द्र के कारण-कण से-
लका-पति हो जाते हैं,

जहाँ सत्य है, वहीं मनुज को-
जीवन-यश मिल पाते हैं,
सत्य-व्रती को आगे बढ़कर-
स्वय राम अपनाते हैं।

एकोनविंश सर्ग

अगम सिन्धु लहराता लहरें-
　　उठ-उठकर गिर जाती थी,
वेगवती धाराएँ तट से-
　　आ-आकर टकराती थी,

सागर का था रोर भयानक-
पवन वेग से चलता था,
महाभयकर गर्जन सुनकर-
सबका प्राण दहलता था,

एक शिला पर बैठ राम थे-
अपने बाण सुधार रहे,
बाएँ थे सुग्रीव, विभीषण-
दाएँ, काम विचार रहे,

सोच रहे थे मिलकर सब जन-
कैसे सागर पार करें ?
अम्बुधि के उस पार किनारे-
कैसे कपि का दल उतरे ?

सौ योजन का पाट देखकर-
धैर्य न कोई धरता था,
लगता गरज-तरज कर सागर-
पल-पल वर्जन करता था,

रामचन्द्र ने कहा-विभीषण!
कैसे क्या उपचार करें ?
कब तक हम निष्क्रिय यहाँ पर-
बैठे, सोच-विचार करें ?

लकापति विभीषण बोले-
सिन्धु आपका दास सदा,
रघुकुल द्वारा निर्मित है यह-
कहता है इतिहास सदा,

आप स्वय इस सागर से जब-
अपनी बात बतायेंगे,
है विश्वास कि सिन्धु आपकी-
बात मान ही जाएँगे,

कहा राम ने-आओ, तब हम-
सागर से ही विनय करें,
उनको ही हम प्रकट हृदय का-
अपना आशय अभय करें,

स्वय बिछाकर कुश का आसन-
बैठ गए फिर राम वहीं,
ध्यान लगाकर लगे सुनाने
विनय-गीत अभिराम वहीं,

किन्तु याचना का यह मत था-
लक्ष्मण को स्वीकार नही,
कहा रोष से अनुनय कैसा?
हम हैं कुछ लाचार नहीं,

यही आलसी-धर्म की मन-से-
पौरुष का हम त्याग करें,
क्षात्र-धर्म यह नहीं कि अपने-
बाणों का परित्याग करें,

बाण हमारे हाथों में है-
सिन्धु सुखा ही सकते हैं,
बाणों से ही पाट समुन्दर-
मार्ग बना ही सकते है,

कहा राम ने-लक्ष्मण, ठहरो-
मर्म तुम्हें बतलाते हैं,
पहले, धरती पर करुणामय-
अपना रूप दिखाते हैं,



सागर-तट पर राम विनय के-
साधन के लवलीन रहे,
याचक-भाव-भजन में मन से-
तीन दिनों तक लीन रहे,

किन्तु समुन्दर मौन रहा वह-
पलभर तनिक न बोल सका,
रहे ताकते राम, किन्तु वह-
पथ न कोई खोल सका,

सहसा क्रोध जगा राघव में-
हाथ उठा कर बोल उठे,
ऐसा स्वर था, लगा कि जैसे-
पर्वत तक हैं डोल उठे,

लक्ष्मण! बाण-सरासन लाओ-
और नहीं सह पाऊँगा,
तुरत सुखाकर इस सागर को-
अपना पथ बनाऊँगा,

बहुत हुआ यह सिन्धु भक्ति से-
बात न कोई मानेगा,
क्षण में रेत करूँगा इसको-
तब मुझको पहचानेगा,

मेरी निश्छल विनय-भक्ति को-
पापी व्यर्थ समझता है,
युक्त क्षमा से हूँ मैं, लेकिन-
वह असमर्थ समझता है,



रामचन्द्र ने धनुष उठाया-
तुरत प्रबल टकार हुआ,
दिशा-दिशा तक लगी काँपने-
ऐसा घोष अपार हुआ,

इतना कहकर अवनत सागर–
क्षण में अन्तर्धान हुआ,
पूरी सेना हुई प्रफुल्लित–
जगमग नया विहान हुआ,

लहर खुशी की गूँजी सब जन–
खुशी मनाते जाते थे,
विपुल–वाहिनी के जन–जन तक–
रघुपति के यश गाते थे।

विंश सर्ग

वानर दल में चहल-पहल थी-
सब में था उल्लास नया,
शीघ्र समुन्दर पार करें हम-
करते सभी प्रयास नया,

वड़े-वड़े पत्थर के ढोके-
ढो-ढोकर सब लाते थे,
वड़े-बड़े वृक्षों को लाकर-
वानर वहाँ बिछाते थे,

नल जिस पत्थर को छू देते-
वही तैरने लगता था,
पग-पग आगे बढ़ने का ही-
भाव सभी में जगता था,

वानर-भालू-रीछ-अनेकों-
सब सामान जुटाते थे,
नील और नल जल्दी-जल्दी-
सिन्धु पाटते जाते थे,

वानर-सेना लगी दौड़ने-
ऐसा कार्य महान हुआ,
पाँच दिनों में ही सौ योजन-
पुल का था निर्माण हुआ,



दल के दल किलकारी भरते-
वानर चलते जाते थे,
लहर सिन्धु की थयम गयी थी-
पर्वत तक अकुलाते थे,

दिशा-दिशा तक सिहर उठी थी-
पवन वेग से चलता था,
धूला उठी लका तक ऐसी-
लगा कि सूरज ढलता था,

दिन में ही घनघोर अन्धेरे-
जैसा नभ भर आया था,
लगा कि जैसे राक्षसपुर में-
दुर्दिन का घन छाया था,

बड़े वेग से वानर के दल-
लका तट पर उतर गए,
पच्छ्युक्त सब पर्वत जैसे-
लगते योद्धा नए-नए,

लका के गिरि एक शिखर पर-
दल-बल सब चढ आए थे,
इसके धवल सुबेल शृग पर-
अपना केन्द्र बनाए थे,

पास यहाँ से लका का गढ-
उन्हें दिखाई पड़ता था,
राक्षस-गण का शोर भयकर-
उन्हें सुनाई पड़ता था,

सुनकर कपि–दल क्रोधित होकर–
किट्–किट् दाँत बजाते थे,
बडी–बडी चट्टान उठाकर–
सभी फेंकते जाते थे,

पर्वत जड़ से लगे उखड़ने–
शोर विपुल घनघोर हुआ,
दनुज पुरी में आज अचानक–
अशकुन चारों ओर हुआ,

गीध महल पर बैठे, कौए–
काँव–काँव कर उडते थे,
श्वान–सियार–बिडाल काट कर–
सब के पथ पर मुड़ते थे,

शैल–शृंग से वानर–गण सब–
नीचे को थे देख रहे,
निशाचरों की सारी हरकत–
सब थे सहज परेख रहे,

लका के नर–नारी मन से–
दिखते सब घबड़ाए थे,
घर–घर पर तैनात पहरुए–
भीतर से अकुलाए थे,

कोई भी कुछ बोल न पाते-
दिखते थे सब डरे-डरे,
नीर बरसने वाले बादल-
जैसे दृग थे भरे-भरे,

चलते-फिरते लोगों की भी-
आँखें सूनी लगती थीं,
एक अजब मातम की काली-
छाया सब पर जगती थी,



यहाँ सुबेल शिखर पर वानर-
नव-नव हर्ष मनाते थे,
लका के गढ पर चढने का-
मन में जोश जगाते थे,

कहा राम ने सबसे-भाई-
सदा चौकसी रखनी है,
पौ फटते ही लका गढ पर-
हमें चढाई करनी है,

हनुमत बोले-चिन्ता कैसी-
वानर सब तैयार यहाँ,
पत्थर-वृक्ष असख्यक भू पर-
हम सबके हथियार यहाँ,

कौन यहाँ रोकेगा भगवान्!
निश्चय हम जय पाएँगे,
विजय-केतु फहरा कर ही हम-
वापस घर को जाएँगे।

इकविंश सर्ग

पौ फटते ही लका गढ पर-
जम कर हुई चढाई,
वानर और निशाचर सब में-
कसकर हुई लड़ाई

कभी तमीचर आगे बढ़ते-
वानर पीछे आते,
कभी वानरी सेना निश्चर,
सबको मार भगाते,

राक्षस-दल के पास अनेकों-
अस्त्र-शस्त्र औ रथ थे,
जाने औं पहचाने उनके-
जगल के सब पथ थे,

वानर-भालू-पास महज थे-
दाँत और नख आयुध,
फिर भी इनके आघातों से-
खोते निश्चर सुध-बुध,

वृक्षों औ चट्टानों पर से-
करते थे कपि सगर,
लका के अनजान डगर पर-
धूम मचाते बन्दर,

कोई इनको रोक न पाते-
निश्चर सब घबड़ाए,
लगे भागने जहाँ-तहाँ सब-
अपनी जान बचाए,

वीर बाँकुडे आजनेय ने-
चढ़कर लका गढ पर,
भीषण युद्ध किया था जय-जय-
रामचन्द्र की कहकर,

घोर पराक्रम किया, हजारों-
रिपु को काट दिया था,
निश्चर-गण के लोथों से ही-
भू को पाट दिया,

जिधर-जिधर वे पाँव बढ़ाते-
निश्चर सब घबड़ाते,
इन्हें देखते दूर किनारे-
सभी भागते जाते,

हाल देखकर रावण दौड़ा-
खुद ही रण में आया,
राक्षस-गण के मन में फिर से-
साहस धैर्य बँधाया,

डटे पुन जब निश्चर रण में-
महावीर ने कसकर
मार गिराया एक-एक को-
बात-बात में हँसकर,

अति घबड़ाया था दशकंधर-
बोला-तुम सब जाओ,
जैसे भी हो कुम्भकर्ण को-
रण में जल्दी लाओ,



गहन नींद से जगकर आया-
कुम्भकर्ण अब रण में,
आते ही कुहराम मचाया-
पलक मारते क्षण में,

बड़ा भयंकर लगता था वह-
पर्वत-सा मदमाता,
महाकाल-सा चलता था वह-
रण में अकड़ दिखाता,

वानर-सेना ठहर न पायी-
लगी भागने डर से,
तब आए हनुमान सामने-
लड़ने को पत्थर से,

लेकिन कपि-वर ठहर न पाए-
वे बेहोश पड़े थे,
उसके कुटिल प्रहारों से अब-
लगते गड़े-गड़े थे,

रामचन्द्र ने देखा मारुति-
सचमुच थे घबड़ाए,
तुरत दौड कर बीच समर में-
वाण सम्भाले आए,

बोले-निश्चर कुम्भकर्ण! तुम-
मुझ से नहीं बचोगे,
वानर से क्या लडते? आओ-
प्राण यहीं पर दोगे,

कुम्भकर्ण तब दौडा व्याकुल-
पर्वत एक उठाया,
रामचन्द्र ने उसके दोनों-
कर को काट गिराया,

फिर भी दौड़ा तुरत राम ने-
पग को काट दिया था,
महाभयकर उस राक्षस को-
कुछ लाचार किया था,

कुम्भ कर्ण अब मुँह फैलाए-
वानर गण को खाता,
बढा पेट के बल आता था-
अपना जोर दिखाता,

रामचन्द्र ने क्षण में अपना-
नूतन बाण निकाला,
महाभयकर उस राक्षस को-
तुरत मार ही डाला,



लका में सब ओर भयकर-
मातम था अब छाया,
कुम्भ कर्ण मर गया, हृदय से-
रावण था अकुलाया,

द्विविंश सर्ग

रावण था घबड़ाया उसका-
 भाई वीर मरा था,
सिंहद्वार पर उसका मस्तक-
 कटकर अभी धरा था,

मन से सिसक रहा था, ऊपर-
शान्त दिखाई पडता,
लगता था अब घेर रही थी-
उसको अपनी जडता,

इतने में घननाद पधारा-
अपना शीश नवाए,
कहा-पिता श्री आज्ञा दे दें-
रिपु को सबक सिखाएँ,



मेघनाद ने बड़ा भयकर-
युद्ध किया था आकर,
रख छोडा था वानर-दल में-
सब का दिल दहलाकर,

जो भी आते उसके शर से-
कभी नहीं बच पाते,
उसके सम्मुख दाँत सभी के-
खट्टे थे हो जाते,

लखन लाल ने बहुत सँभलकर-
उस पर वार किया था,
किसी तरह से उस पापी को-
गहरा घाव दिया था,

किन्तु तुरत ही बड़ा भयकर-
या ब्रह्मास्त्र चलाया,
कोई वानर-वीर युद्ध में-
उसको रोक न पाया,

लगा लखन को, गिरे तुरत ही-
सँभल न क्षण भर पाए,
रामचन्द्र ने उन्हें देखकर-
दृग से अश्रु बहाए,

कहा सुषेण वैद्य ने औषधि-
मिल सकती हिमगिरी पर,
लखन तभी बच सकते, कोई-
औषधि लाए जाकर,

वातजात ही चले, सभी को-
कुछ आश्वासन देकर,
रातों रात वहाँ से आए-
पर्वत को ही लेकर,

हुआ तुरत उपचार लखन की-
जान जान में आई,
'पवन-पुत्र की जय-जय कहकर,
सबने खुशी मनाई,



लका में थी खुशी कि लक्ष्मण-
कभी नहीं बच सकते,
प्राण-विघातक बाण लगा है-
ऐसा ही सब कहते,

किन्तु सुबह जब पता चला था-
लक्ष्मण-स्वस्थ हुए है,
उनके कारण वानर रण में-
फिर आस्वस्थ हुए हैं,

सुनकर, सभी असुर-गण तड़पे-
सब का मन घबड़ाया,
था आश्चर्य कि ऐसे कैसे-
लखन लाल बच पाया ?

शक्राजित ने मन में सोचा-
नयी राह है धरनी,
रण हो अपने पक्ष, तपस्या-
ऐसी ही है करनी,

तुरत गया वह एक गुफा में-
भीषण यज्ञ रचाने,
देव-प्रताडक निकला अपने-
प्रभु को पुन मनाने,

खबर विभीषण ने जब पाई-
कहा राम से जाकर,
मेघनाद है यज्ञ रचाता-
कहीं गुफा के अन्दर,

पूर्ण हुआ यदि यज्ञ तो निश्चय-
मर न सकेगा पापी,
घोर उपद्रव मचा रहा यह-
देव-मनुज-सतापी,

कहा राम ने लक्ष्मण से तब-
भाई, तुम ही जाओ,
बहुत हुआ अब उस पापी को-
जल्दी स्वर्ग पठाओ,

तीर-धनुष काँधे पर कस कर-
पवनात्मज को लेकर,
निकले तुरत सुमित्रानन्दन-
रण के नूतन पथ पर,

यज्ञ भूमि तक जा लक्ष्मण ने-
कसकर तीर चलाया
उठ अपावन मेघनाद तब-
बैठ नहीं फिर पाया,

कपि-दल ने विध्वस किया तप-
ऊधम खूब मचाकर,
मेघनाद भी भिडा अकेला-
पूरा जोर लगाकर,

लक्ष्मण औं शक्रारि वहाँ थे-
अपनी शक्ति दिखाते,
एक-दूसरे पर दोनों थे-
कस-कस बाण चलाते,

कुछ ही क्षण में किन्तु लखन ने-
उसको मार गिराया,
हाहाकार हुआ लका पर-
भीषण सकट आया,

सुनते ही दशग्रीव लगा था-
दुख से थर-थर कँपने,
उसके जलते दृग से आँसू-
टप-टप लगे टपकने,

यथवाजित मर गया, श्रवण कर-
असुर लगे सब रोने,
लगा वहाँ उस स्वर्णपुरी में-
घर-घर मातम होने,

वानर-दल में हर्ष हुआ सब-
उत्सव लगे मनाने,
लक्ष्मण जी की जय-जय कहकर-
लगे फूल बरसाने।

तेविश सर्ग

घोर भयकर युद्ध छिड़ा था–
राम और रावण में,
ग्रस्त-त्रस्त थे जन-जन मानो–
महाप्रलय के क्षण मे,

एक तरफ थे राम दूसरी-
ओर खड़ा था रावण,
दोनों थे निष्णात युद्ध में-
करते समर भीषण,

वानर-दल 'जय राम' सुनाते-
राक्षस, 'रावण' भजते,
दोनों दल थे अशनि-पात से-
दोनों ओर गरजते,

प्रलय घिरा था कितने योद्धा-
रण में खेत हुए थे,
महा-महा मुखिया तक गिरकर-
वहाँ अचेत हुए थे,

मुण्ड किसी का कहीं गिरा था-
रुण्ड कहीं था भारी,
लड़-लड़कर सब योद्धा-गण थे-
मरते बारी-बारी,

कोई कुछ भी देख न पाता-
तीर कहाँ से आया,
जाने किसने किसका मस्तक-
धरती पर लुढ़काया,

तड़क-तड़क कर तीर कड़कते-
अम्बर में टकराते,
इसे देखनेवालों तक के-
रोम खड़े हो जाते,

कीच रक्त की बनी धरा पर-
लोथों की थी ढेरी,
दोनों दल पर महानाश की-
होती फेरा-फेरी,

कर विहीन औ शीश बिना धड़-
तड़प-तड़प गिर जाते,
लाल-लाल लोहू की लहरों-
में कुछ नृत्य दिखाते,

महाभयकर मरण-दृश्य था-
लका पर घहराया,
लगता जैसे रण-चण्डी ने-
भीषण रुप दिखाया,

चील-गीध शवों पर बैठे-
अपनी क्षुधा मिटाते,
आँख किसी की नोंच रहे थे-
आँत किसी की खाते,

दिशा-दिशा से त्राहि-त्राहि का-
पड़ता शब्द सुनाई,
महामरण का दृश्य अनोखा-
पड़ता था दिखलाई,

रथारूढ रावण था सब पर-
उत्कट कहर गिराता,
जो भी सम्मुख पड़ जाता वह-
तत्क्षण प्राण गँवाता,

राम विरथ थे, फिर भी जमकर-
करते थे दृढ सगर,
पल-पल काट रहे थे उद्भट-
रावण के शर दुर्द्धर,

उन्हें देखकर स्वय इन्द्र ने-
अपना रथ भिजवाया,
सारथि मातलि स्यदन लेकर-
पास शीघ्र ही आया,



रथ पर राम चढे अब करते-
बाण-प्रहार भयकर,
हुए अचानक हतप्रभ जैसे-
लका के सब निशचर,

तरह-तरह के बाण दनुज पर-
रघुपति छोड रहे थे,
अपने प्रबल घात से उसका-
आनन मोड़ रहे थे,

लेकिन वह दशकठ बना था-
दृढ दिवार का लेखा,
एक-एक सिर लगते थे ज्यों-
अमर शिला की रेखा,

बाण लगा, सिर उड़ा, नहीं वह-
किन्तु विपन्न हुआ था,
फिर से उसका मस्तक धड़ पर-
नव उत्पन्न हुआ था-

इसी तरह सौ बार राम ने-
मस्तक काट गिराए,
लेकिन था आश्चर्य कि मस्तक-
फिर-फिर उगते आए,

बड़ा विकट था सकट उसका-
अन्त नहीं हो पाता,
राम काटते जाते मस्तक-
लेकिन वह मुस्काता,

कहा विभीषण ने रघुपति से-
मस्तक मत सहारें,
नाभिकुण्ड में अमृत इसके-
बाण वहीं पर मारें,

रामचन्द्र ने तरकस से तब-
नूतन बाण निकाला,
तान कान तक प्रत्यञ्चा को-
तुरत छोड़ ही डाला,

राक्षसेन्द्र को लगा कि जैसे-
काल अचानक आया,
बाण हाथ से गिरे खिसक कर-
सम्भल नहीं वह पाया,

रथ से नीचे गिरा स्वयं ही-
सब कुछ हारा-हारा,
लोग-बाग सब देख रहे थे-
पर वह स्वर्ग सिधारा,

✦ ✦ ✦

शोर हुआ सब ओर कि रावण-
का अब अन्त हुआ है,
पाप मिटा धरती पर जाग्रत-
पुण्य वसन्त हुआ है,

✦ ✦ ✦

वानर-दल ने खुशी मनायी-
सबका हृदय खिला था,
आज विभीषण को लंका का-
शासन-भार मिला था,

वानर-गण सब प्रणत-भाव से-
रघुपति-सम्मुख आए,
विजयोत्सव की पुण्य घड़ी में-
सब के मन हर्षाए,

दूर-दूर तक लगी गूँजने-
रघुवर की जय गाथा,
धरती विहँसी, सकल मनोरथ-
सबका पूर्ण हुआ था,

मरूत्वान ने हाथ जोडकर-
प्रभु से किया निवेदन,
मिटा पाप-परिताप भुवन का-
धन्य हुआ यह जीवन,

अब आज्ञा प्रभु हमें दीजिए-
कौन काम है बाकी,
खिला नया आलोक, मिटी अब-
काली रात अमा की,

धन्य विभीषण लकापति थे-
प्रभु का भजन सुनाते,
रघुपति के यश--गौरव को ही-
मन-ही-मन दुहराते,

चौविश सर्ग

राक्षसपुर में खुशी भरी थी-
लोग-बाग मुस्काते,
नृपति विभीषण थे निज उर से-
रघुपति के गुण गाते,

अञ्जलि-बद्ध पधारे प्रभु के-
सम्मुख शीश झुकाए,
कहा राजन। काम शेष जो-
मुझको शीघ्र बताएँ,

मारुति-नन्दन साथ पधारीं-
सीता मन से विह्वल,
देख रही थी बैठे अपने-
आर्युपुत्र को चचल,

जनक किशोरी बोली-प्रभुवर!
ग्रहण करें अभिनन्दन,
शुद्धभाव औं निर्मल मति से-
करती हूँ मैं वन्दन,

वहीं शिला पर बैठ गए प्रभु-
साथ जानकी माता,
देख-देखकर वानर-भालू-
का अन्तर हर्षाता,

कहा विभीषण ने-कुछ दिन अब-
लका में ही रहिए,
कैसे करूँ निवेदन-वदन-
इतना भर प्रभु कहिए,

कहा राम ने-मुझे अयोध्या-
की अब याद सताती,
जाने कैसे भरत लाल हैं-
बात यही मन आती,

जितनी जल्दी कर सकते हो-
मुझको अब भिजवाओ,
कैसे शीघ्र वहाँ हम पहुँचे-
वैसी बात बताओ,

✦ ✦ ✦

पुष्पक यान खड़ा था, चम चम-
दिखता धवल सुहाना,
उस पर भरा-धरा था नूतन-
भूषण-वस्त्र खजाना,

रामचन्द्र ने कहा-विभीषण।
अम्बर में ले जाओ,
और वहीं से वस्त्राभूषण-
जाकर स्वय गिराओ,

लकापति ने पट-आभूषण-
नभ से स्वय गिराए,
दौड़-दौड़ कर वानर-भालू-
ले-लेकर हर्षाए,

खुशी छलकती सब के मन में-
हर्ष अपार खिला था,
एक-एक कर सब प्राणी को-
नव उपहार मिला था,

सब परिपुष्ट तुष्ट अन्तर से-
कोई क्षोभ नहीं था,
सदा राम का साथ रहे बस-
मन में लोभ यही था,

सब ने किया निवेदन-हम भी-
प्रभु के साथ चलेंगे,
रामचन्द्र की अवधपुरी में-
हम विश्राम करेंगे,

✦ ✦ ✦

अगद औं सुग्रीव विभीषण-
प्रभु का करके वन्दन,
एक-एक सब भालू-बन्दर-
बैठे मारुति नन्दन,

बैठे सीता-राम-लखन तब-
पुष्पक यान उड़ा था,
अवधपुरी के पथ पर ऊपर-
नभ में तुरत मुड़ा था,

कहा राम ने-देखो सीता।
रावण यहीं मरा है,
मेघनाद औं कुम्भकर्ण का-
शव भी यहीं धरा है,

एक-एक कर रामचन्द्र ने-
सब थल थे दिखलाए,
सीता-हरण हुआ तब कैसे-
कहाँ-कहाँ भरमाए,

इतने में ही बढे वेग से-
तीर्थराज जब आया,
रामचन्द्र ने पुष्प-यान को-
तुरत वहाँ ठहराया,

मारुति-नन्दन तुरत यहाँ से-
अवधपुरी में आए,
भरत लाल को राम-आगमन-
के सब हाल बताए,

अवधपुरी के कण-कण में फिर-
लहर खुशी की छाई,
मरु के सूखे तरुवर की ज्यों-
शाख-शाख लहराई,

तीर्थराज में रात बिताकर-
खिली सुबह की बेला,
अवधपुरी में आकर उतरा-
पुष्पयान अलबेला।

पचविश सर्ग

कोशलपुर के कण-कण में था-
    राग नया लहराया,
चौदह वर्षो बाद खुशी का-
    दीपक था जल पाया,

पुष्पकयान धरा पर उतरा-
लोग-बाग हर्षाए,
भरत दौड़कर राम-चरण पर-
सादर शीश झुकाए,

सत्यव्रती श्रीराम भरत को-
स्नेह-सहारा देकर,
खुशी मनाई उन्हे यान पर-
साथ सभी के लेकर,

भरत लाल ने लक्ष्मण जी का-
ग्रहण किया था वन्दन,
माँ सीता का चरण पकड़कर-
वहाँ किया अभिनन्दन,

फिर सुग्रीव-विभीषण-अगद-
को था गले लगाया,
पूरे वानर-दल--बल को ही-
अपना स्नेह जताया,

विह्वल से शत्रुघन राम के-
चरणों पर गिर आए,
सीता-लखन-समेत सभी के-
पग में शीश नवाए,

राम चन्द्र ने माताओं को-
अपना नमन सुनाया,
पाँव पकड़कर जन-जन के प्रति-
अपना स्नेह दिखाया,

गुरु वशिष्ठ ज्यों दिखे, चरण पर-
मस्तक तुरत नवाया,
स्वाति-बूँद चातक को जैसे-
मिलता, आशिष पाया,

जनक किशोरी के सग लक्ष्मण-
ने भी नमन किया था,
गुरु के चरण-कमल पर झुककर-
आशीर्वाद लिया था,

परिजन-पुरजन थे आह्लादित-
राम सभी से मिलते,
बहुत दिनों पर सबके मन के-
पकज थे अब खिलते,

भरत लाल ने चरण-पादुका-
उन्हें तुरत लौटायी,
'वापस लें साम्राज्य अवध का-
कहकर उन्हें पिन्हायी,

रामचन्द्र ने पुष्पयान को-
वापस तुरत पठाया,
तुम कुबेर की सेवा, में ही-
जाओ कह भिजवाया,

✦ ✦ ✦

रामचन्द्र की सहमति से फिर-
उत्सव साज सजे थे,
जन-मन हर्षित मगल-वादन-
भेरी शख बजे थे,

तरह-तरह के शुभ कर्मों में-
तत्पर सब हो आए,
एक दूसरे का सब मिलकर-
जटा जूट निरू आए,

वन्दन वार-ध्वजा घर-घर पर-
फर-फर थी फहराती,
फल-फूलों से लदे विटप थे-
लता ललित लहराती,

कण-कण था अभिदिष्ट हुआ-सा-
नए रग में सजता,
शुभ अभिषेक राम का सुनकर-
मगल वादन बजता,

सोने का सिंहासन नूतन–
सभी तरह से उत्तम,
हीरे–मोती–रत्न जड़ित था–
दिनमणि से भी चम चम,

मुनिवर ने ज्यों राम–जानकी–
को लाकर बैठाया,
हर्षोल्लास समन्वित 'जय–जय'–
स्वर अम्बर तक छाया,

दिग–दिगन्त तक पुलक उठा था–
पवन झूम कर चलता,
सीतापति श्री रामचन्द्र की–
जय का घोष निकलता,

गुरु वशिष्ठ ने अपने हाथों–
उत्सव नेक किया था,
मन्त्रपूत जल लेकर रघुपति–
का अभिषेक किया था,

दीप्तिमान वह मुकुट, विधाता–
ने था जिसे बनाया,
ऋषिवर ने अपने हाथों से–
दिव्य किरीट पिन्हाया,

विप्र सचित औं पडित जन थे-
तिलक मागलिक करते,
परिजन-पुरजन रामचन्द्र के-
पग पर मस्तक धरते,

भरत-लखन-रिपुसूदन मिलकर-
स्वर्णिम छत्र लगाते,
वानरपति सुग्रीव-विभीषण-
अगद चँवर डुलाते,

भावाकुल अभिभूत पवन-सुत-
चरण पखार रहे थे,
अवध-निवासी नर-नारी सब-
जय-जयकार रहे थे,



राजा राम हुए थे सारी-
वसुधा मोद मनाती,
महानन्द के रस में डूबी-
अवधपुरी हर्षाती,

तरह-तरह के विमल महोत्सव-
घर-घर में थे होते,
राजा राम हुए थे जन-जन-
पुण्य अलौकिक ढोते,

मर्त्य लोक से अवधपुरी तक-
नव उमग लहरायी,
राजा राम हुए थे वसुधा-
फूली नहीं समायी,



दिन-दिन सुख से रहे बीतते-
हर क्षण उत्सव होता,
सहज भाव आनन्द-मगन-मन-
भार न कोई ढोता,

किन्तु एक दिन कपि-गण की जब-
विदा-घड़ी थी आई,
ममता सब में जगी कि जैसे-
सब हों सोदर भाई,

बड़े प्यार से वानर-पति को-
रघुवर ने बुलवाया,
दिव्य हार सोने का अनुपम-
निज कर से पहराया,

अगद को दो बाजु-बन्द का-
नव उपहार मिला था,
लका-नृपति विभीषण को भी-
तत्त्व अपार मिला था,

माँ सीता ने माला अपनी-
झटपट तुरत उतारी,
पवन-पुत्र को देकर बोलीं-
यह है भेंट तुम्हारी,

मारुति बोले-मुझको मइया-
मत लाचार बनाओ,
अपने चरण-कमल की सेवा-
से मत दूर भगाओ,

इतना कहकर मारुति उनके-
चरणों में गिर आए,
रामचन्द्र ने तुरत उठाकर-
उनको गले लगाए,

रामचन्द्र ने शान्त भाव से-
कहा सभी से-जाओ,
मुझ में तुझ में भेद नहीं है-
मन में यही बिठाओ,

जाओ, लेकिन जहाँ रहो तुम-
याद मुझे नित करना,
ज्योति सत्य की रहो जगाए-
तम से कभी न डरना,

पुण्य जहाँ दब जाता है तब-
पाप उभर कर आता,
तिमिराच्छन्न उसी अन्तर में-
रावण सौध बनाता,

तुमको सदा सजग रहना है-
दीप जलाए मन का,
उद्धार तुम्हें ही इस जीवन में-
करना है जन-जन का,

सजग तुम्हारा पथ रहे तुम-
सब आन्नद मनाओ,
सब जीवों को सुख पहुँचाते-
जीवन सफल बनाओ,

सुनकर सब जन भरे-भरे से-
अपना शीश झुकाए,
रामचन्द्र का यश दुहराते-
अपने घर को आए,

सभी गए, पर अवधपुरी को-
मारुति छोड़ न पाए,
राम-चरण-पकज में वे हैं-
अब भी हृदय रमाए,

जहाँ राम का नाम, वहीं पर-
मारुति-नन्दन रहते,
राम-नाम की महिमा सब से-
हृदय खोल नित कहते,

'जय हनुमान'-तुम्हारे पग में-
अपनी विनय सुनाता,
पूर्ण मनोरथ कर दो मेरा-
सादर शीश नवाता।।

—

समाप्त